इकाई 21 नगरीय अर्थव्यवस्था का उदय तथा व्यापार और वाणिज्य

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप 13वीं -14वीं शताब्दी में नगरीय अर्थव्यवस्था, शिल्प उत्पादन और व्यापार के विस्तार के विषय में अध्ययन करेंगे। दिल्ली सल्तनत के काल में इन सभी क्षेत्रों में काफी विकास हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे कि दिल्ली सल्तनत के काल में—

- शहरों के आकार और संभवत संख्या में भी भारी वृद्धि हुई,
- शिल्प उत्पादन बहुत अधिक बढ़ा, और
- व्यापार के क्षेत्र में भी बहुत अधिक विस्तार हुआ।

21.1 प्रस्तावना

उपलब्ध समकालीन प्रमाणों से पता चलता है कि गौरी के आक्रमण के समय नगरीय अर्थव्यवस्था ह्रास की स्थिति में थी। सल्तनत की स्थापना से पहले की शताब्दियों में नगरों की संख्या कम और आकार छोटा था। इतिहासकार डी.डी. कोसाम्बी के अनुसार राजधानी भी तम्बुओं का एक ऐसा शहर था जो एक स्थान से दूसरे स्थान प्रस्थान करता रहता था। उच्च शासक वर्ग सेना के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करता रहता था जबकि निम्न कुलीन वर्ग पूर्णतया गांवों में सीमित था। इतिहासकार आर.एस. शर्मा भी शहरों के ह्रास के इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उन्होंने पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के विस्तृत शोध के आधार पर शहरों के ह्रास के मत को पुनः स्थापित किया है। शहरों के ह्रास संबंधी मत की पुष्टि इस काल के मन्द व्यापार से भी होती है। इस काल में सोने चांदी के सिक्कों की भारी कमी तथा विदेशी सिक्कों की पूर्ण अनुपस्थिति भी यह संकेत देते हैं कि विदेशी व्यापार बहुत निम्न अवस्था में था। किसी एक क्षेत्र से प्राप्त सिक्कों के भण्डार में दूसरे क्षेत्रीय राज्यों के सिक्कों की अनुपस्थिति भी यह दिखाती है कि आंतरिक व्यापार भी बहुत मन्द अवस्था में था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के लगभग तुरंत बाद यह स्थिति तेजी से बदलती दिखाई देती है। पुरातात्विक साक्ष्य और सिक्कों के अध्ययन साहित्यिक स्रोतों के इन प्रमाणों की पुष्टि करते हैं कि सल्तनत काल में शहरों का विकास हुआ और व्यापार में वृद्धि हुई। इन प्रमाणों के आधार पर इतिहासकार मौहम्मद हबीब ने ''शहरी क्रांति'' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इकाई 19 में आप इसके विषय में पढ़ चुके हैं।

21.2 शहरों का विकास

शहरों की संख्या और आकार में वृद्धि के विषय में उपलब्ध प्रमाणों की चर्चा करने से पहले, आइये हम यह देखें कि शहर या नगर का क्या तात्पर्य है। शहर की दो साधारण परिभाषायें हैं: i) आधुनिक सामान्य परिभाषा के अनुसार 5000 से अधिक जनसंख्या वाली कोई बस्ती, ii) एक ऐसी बस्ती जहाँ अधिकांश जनसंख्या (लगभग 70% से ऊपर) कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में संलग्न हों। यह दोनों परिभाषायें एक दूसरे की पूरक नहीं हैं परन्तु द्वितीय परिभाषा बहुत छोटे शहरों पर भी लागू हो सकती है।

प्राचीन काल के लिए जिस प्रकार के पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं वे 13वीं-15वीं शताब्दी के लिए नहीं मिलते क्योंकि मध्यकालीन पुरातत्व के क्षेत्र पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इस काल के ग्रन्थ नगरों के विकास की पुष्टि करते हैं। समकालीन ग्रन्थों में जिन प्रमुख नगरों का विवरण मिलता है वे हैं—दिल्ली, (राजधानी), मुल्तान, अन्हिलवाड़ा (पाटन), खम्भात, कड़ा, लखनौती और दौलताबाद (देवगिरि)। लाहौर एक बड़ा शहर था परन्तु 13वीं शताब्दी के मंगोल आक्रमणों के बाद इसका ह्रास हुआ किन्तु 14वीं शताब्दी में यह फिर समृद्ध हो गया। इस काल में शहरों की जनसंख्या के लिए कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती परन्तु ऐसे उल्लेख अवश्य मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उस समय के मानकों से वे काफी बड़े शहर थे। इब्न बतूता, जो 1330 में दिल्ली आया, लिखता है कि दिल्ली, जबकि मौहम्मद तुगलक वहाँ की बड़ी जनसंख्या दौलताबाद स्थानांतरित कर चुका था तब भी सम्पूर्ण पूर्वी इस्लामिक साम्राज्यों में आकार और जनसंख्या में सबसे बड़ा शहर था। दौलताबाद के विषय में भी वह कहता है कि वह आकार में इतना बड़ा था कि दिल्ली का मुकाबला कर सकता था। इस काल में कुछ नए शहर भी अस्तित्व में आए जैसे राजस्थान में झाइन जिसका नाम अलाउद्दीन खलजी के काल (1296-1316) में "शहर नौ" (नया शहर) रखा गया।

शहरी विकास के उत्तरदायी कारण

एक अपरिचित नए प्रदेश में आने वाले आक्रमणकारियों के लिए स्वाभाविक था कि वे इधर-उधर बिखरे रहने की अपेक्षा संयुक्त रूप से रहें। इसलिए प्रारंभिक चरणों में तुर्क आक्रमणकारी अपने घुड़सवारों के साथ अपने **इक्तों** के मुख्यालयों में रहने लगे। प्रारंभिक अवस्था में **इक्ता** मुख्यालयों में **मुक्ती**, उसके घुड़सवार, उस पर निर्भर अन्य वर्ग, नौकर-चाकर और इन सभी के परिवार केन्द्रित थे और यह एक बड़े सैनिक शिविर नुमा शहर थे। वास्तव में इस काल के अधिकांश शहरों का समकालीन स्रोतों में **इक्ता** मुख्यालयों के रूप में वर्णन किया गया है उदाहरण के लिए—हांसी, कड़ा, अन्हिलवाड़ा आदि। इन शहरों को बनाए रखने के लिए इन्हें अनाज और आवश्यकता की वस्तुएं उपलब्ध कराना पड़ता था। प्रारंभ में **खराज/माल** (भूमिकर) की वसूली के लिए सैनिक आस-पास के गांवों पर धावा बोलते थे अथवा लूट मार करते थे। लेकिन धीरे-धीरे चौदहवीं शताब्दी तक, जैसा कि मोरलैण्ड कहता है, नकद धन के रूप में कर वसूली की व्यवस्था स्थापित हुई। अब किसानों से भूमिकर नकद धन के रूप में मांगा जाता था। अब किसान खेतों पर ही अपना अनाज बेचने के लिए मजबूर हो जाते थे। व्यापारीगण शहरों की आवश्यकताओं की आपूर्ति करते थे जिससे व्यापार का ऐसा सिलसिला चला जिसे हम "प्रेरित व्यापार" कहते हैं।

एक भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले इस नये शासक वर्ग की आराम और विलासिता की आवश्यकतायें भी भिन्न थीं, वे फारसी कविता और गाने, भिन्न प्रकार के नृत्य, किताबें, पहनने के लिए रेशमी कपड़े तथा मेहराबी भवन निर्माण चाहते थे। उस काल के मानदण्डों के अनुसार इस वर्ग के पास अपार संसाधन थे अतः वे इनसे अपनी रुचि के अनुसार आराम और विलासिता की वस्तुएं प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए इस्लामी संस्कृति के केन्द्रों से अप्रवास को प्रोत्साहन मिला। इन अप्रवासियों में, जैसा कि इसामी ने लिखा है, केवल सैनिक ही नहीं बल्कि, शिल्पी, कारीगर, गायक, नृतक, संगीतज्ञ, कवि, हकीम, ज्योतिषी आदि भी थे। अप्रवासी कुशल कारीगरों ने संभवतः नई तकनीकों और तकनीकी का प्रयोग किया (इसके विषय में आप विस्तार से इकाई 22 में पढ़ेंगे)। समय के साथ-साथ भारतीय कारीगरों ने भी नये शिल्पों के विषय में सीखा।

बोध प्रश्न 1

1) तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के शहरों के विकास के लिए उत्तरदायी कारक बताइये।

....

....

....

....

....

....

....

....

निम्नलिखित कथनों पर सही (√) अथवा गलत (×) का निशान लगाइये :

i) सन् 1200 ई. से पहले के प्राप्त सिक्कों के भण्डारों में सामान्यतः विदेशी सिक्के नहीं मिलते हैं। ( )

ii) दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण काल म लाहौर एक बड़ा शहर रहा। ( )

iii) इब्न बतूता दिल्ली की जनसंख्या के विषय में अपना अनुमान बताता है। ( )

21.3 नगरीय उत्पादन

ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने शहरी शिल्प उत्पादन को दोहरा बढ़ावा दिया i) सल्तनत कालीन शासक वर्ग शहरों में केन्द्रित था और अपने अपार संसाधन, जो उसे भूमि कर के रूप में प्राप्त होते थे, शहरों में ही खर्च करता था। यह धन वह सेवाओं के भुगतान के रूप में देता था या उत्पादित वस्तुएं खरीदता था। जो धन सेवाओं के भुगतान के रूप में दिया जाता था उसका एक भाग भी गुणक प्रभाव के कारण शिल्प उत्पादन के क्षेत्र में जाता था। जबकि शासक और अमीर वर्ग की मांग अधिक मूल्य की विलासिता की वस्तुओं की थी; उस पर निर्भर निम्न वर्ग ने साधारण आवश्यकता के शिल्प उत्पादन के लिए एक बड़े बाजार को जन्म दिया।

ii) नगरीय उत्पादन को बढ़ाने वाला दूसरा प्रमुख कारण आक्रमणकारियों द्वारा भारत लाई गई नई तकनीकें थीं (इसके विषय में विस्तृत अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे)। विलासिता के क्षेत्र में रेशम के कपड़ों का उत्पादन बढ़ा; ईरान से कालीन बनाने की कला आई। एक अन्य महत्वपूर्ण नगरीय उत्पादन कागज बनाना था। शहरों में रोजगार प्रदान करने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र संभवतः भवन निर्माण का था। बर्नी के अनुसार अलाउद्दीन ने अपनी इमारतों के निर्माण के लिए लगभग 70,000 कारीगर रखे थे।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 1400 ई. में शहरों में प्रति एकड़ भवनों का अनुपात 1200 ई. की तुलना में कहीं अधिक था।

उत्पादन का संघठन

हमारे लिए यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि उत्पादन किस प्रकार संगठित किया जाता था? क्या शहरों में कारीगर उत्पादन के लिए ''घरेलू पद्धति'' प्रयोग करते थे — अर्थात् उनके पास अपने औजार और कच्चा माल था? क्या उत्पादन पर उनका ही स्वामित्व था और वे स्वयं इसे बाजार में बेचते थे? दूसरे शब्दों में क्या वे स्वयं रोजगार में लग्न थे? अथवा क्या उनके औजार अपने थे और वे अपने घर पर उत्पादन करते थे अथवा उन्हें कच्चा माल व्यापारियों द्वारा दिया जाता था जो उत्पादित वस्तुएं ले लेते थे अर्थात् ये कारीगर **गृह उत्पादन** पद्धति पर कार्य करते थे? समकालीन ग्रंथ इन आयामों के विषय में बहुत कम जानकारी प्रदान करते हैं। फिर भी चूँकि नई तकनीकी के बावजूद अधिकांश औजार लकड़ी या लोहे के होते थे अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि औजार काफी सस्ते थे। इसलिए कारीगर अपने औजारों का स्वयं स्वामी होता था। शायद श्रम के संघठन के भिन्न तरीके प्रचलित थे। कुछ कारीगर घूम-घूम कर आवाज लगाते हुए अपनी सेवाएं बेचते थे। इस श्रेणी में **धुनिये** को रखा जा सकता है जैसाकि **खैरूल मजालिस** में विवरण है यह कंधे पर रुई धुनने का यंत्र रख कर घर-घर आवाज लगाता घूमता था और एक निश्चित धनराशि के बदले लोगों की रुई धुनता था। सूत कातने का काम अधिकांशतः महिलाएं घरों में ही करती थीं। कपड़ा बुनने वाले अपने घरों में करघे पर उस सूत से कपड़ा बनाते थे जो वे स्वयं कातते या बाजार से खरीदते थे। वे एक निश्चित मजदूरी लेकर लोगों द्वारा दिए गए सूत से कपड़ा बनाकर भी देते थे। लेकिन अगर कपड़ा बनाने में प्रयोग होने वाला कच्चा माल रेशम, सोने और चांदी के तार जैसा कीमती होता था तो इसे बनाने के लिए उन्हें किसी की निगरानी में **कारखानों** में जाकर यह कार्य करना होता था। सुल्तान और अमीरों के अपनी आवश्यकता और विलासिता की कीमती वस्तुएं बनाने के लिए स्वयं अपने **कारखाने** थे। इन **कारखानों** की उपस्थिति के विषय में हमें निश्चित जानकारी मिलती है। डी.डी. कोसाम्बी के अनुमान के

विपरीत इन **कारखानों** में इनके स्वामियों के निजी प्रयोग के लिए वस्तुएँ बनाईं जाती थीं बाजार के लिए नहीं। शहाबुद्दीन अल उमरी अपनी पुस्तक **मसालिक-उल अबसार** में लिखता है कि दिल्ली में मौहम्मद तुगलक के कारखानों में लगभग चार हज़ार रेशम के कारीगर कशीदाकारी का कार्य करते थे। अफीफ के अनुसार, फिरोज़ तुगलक के **कारखानों** में कपड़े और कालीन बड़ी मात्रा में बनाए जाते थे यद्यपि हमारे स्रोतों में व्यापारियों के **कारखानों** का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु हम यह कह सकते हैं कि शायद वे भी बाजार के लिए अपने **कारखानों** में कुछ उत्पादन करते हों।

बोध प्रश्न 2

1) तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में नगरीय उत्पादन में वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

2) नगरीय केन्द्रों में श्रम के संघठन के विभिन्न रूपों का विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

21.4 व्यापार तथा वाणिज्य

हम देख चुके हैं कि 13वीं-14वीं शताब्दी में कई बहुत बड़े और बहुत से छोटे-छोटे नगर अस्तित्व में आये और फूले-फले। अपने शिल्प उत्पादन के लिए इन शहरों को कच्चे माल और अस्तित्व के लिए भोजन की आवश्यकता थी। इसी काल में भू-राजस्व की वसूली नकद धन के रूप में करने की प्रथा भी बढ़ रही थी। अलाउद्दीन खलजी के समय तक नकद धन में वसूली की प्रथा पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी जैसा कि हमने पिछली इकाई में देखा नगरों में स्थित शासक वर्गों ने लगभग सम्पूर्ण कृषि उत्पादन के अधिशेष पर अपना अधिकार जमा लिया था और ग्रामीण मध्यस्थ वर्गों का हिस्सा बहुत घटा दिया था।

उपरोक्त सभी कारक आंतरिक व्यापार के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुए। भूमि कर का नकद भुगतान करने के लिए किसानों को अपनी अतिरिक्त उपज तुरंत बेचनी होती थी। जबकि व्यापारियों को नगरों के रूप में ऐसे बाजार प्राप्त थे जहां वे अनाज और खाद्यान्न बेच सकते थे। भू-राजस्व के भुगतान की आवश्यकता के कारण जिस व्यापार का जन्म हुआ उसे ''प्रेरित व्यापार'' कहते हैं।

21.4.1 आंतरिक व्यापार

आंतरिक व्यापार का विकास दो स्तरों पर हुआ; i) गाँव और शहर के बीच थोक वस्तुओ (मुख्य रूप से कृषि उत्पादन) का कम दूरी का व्यापार, ii) विभिन्न शहरों के बीच अधिक मूल्य की वस्तुओं (मुख्य रूप से शिल्प उत्पादन) का अधिक दूरी का व्यापार। जैसा कि पहले बताया जा चुका है गाँव और शहर का यह व्यापार शहरों के अविर्भाव और भूमि कर की नकद वसूली का स्वाभाविक परिणाम था। नगरीय केन्द्र अपने खाद्यान्न और शिल्प उत्पादन के लिए कच्चे माल की पूर्ति के लिए आस-पास के गाँवों पर पूर्णतया निर्भर थे जबकि गाँव में किसानों को भूमि कर का नकद भुगतान करने के लिए अपने उत्पादन को बेचकर धन प्राप्त करना जरूरी था। इस तरह के व्यापार की सबसे बड़ी विशेषता वस्तुओं का एक दिशा में प्रवाह था। शहर अपने आस-पास के गाँवों से खाद्यान्न और कच्चा माल प्राप्त करते थे परन्तु उन्हें अपना शिल्प उत्पादन गाँवों की ओर भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह गाँव लगभग पूर्णतया आत्म निर्भर थे। व्यापार के इस एक दिशा में प्रवाह का प्रमुख कारण भूमि कर का नकद भुगतान था और स्वाभाविक रूप से इसने गाँवों से निरंतर निकासी की व्यवस्था को जन्म दिया तथा शहरों को पूरी तरह गाँवों पर निर्भर कर दिया। इस व्यापार की मात्रा तो बहुत अधिक थी परन्तु मूल्य बहुत कम। यह व्यापार मुख्यतः चावल, चना और गन्ना आदि खाद्यान्नों में तथा शिल्प उत्पादन के लिए कच्चे माल—कपास जैसी वस्तुओं का होता था।

विभिन्न शहरों के बीच का व्यापार मुख्यतः विलासिता की वस्तुओं का था अतः अधिक मूल्य का था। एक शहर के कारीगर और शिल्प उत्पादन दूसरे शहर ले जाए जाते थे। बर्नी इस तरह के व्यापार के बहुत से उदाहरण देता है: राजधानी दिल्ली में शराब कोल (अलीगढ़) और मेरठ से आती थी, मलमल (उत्तम कपड़ा, देवगिरि से तथा अन्य कपड़ा लखनौती (बंगाल) से आता था। इब्न बतूता के अनुसार दिल्ली में साधारण कपड़ा अवध के क्षेत्र से और पान मालवा (जिसे दिल्ली पहुंचने में 24 दिन लगते थे) से आता था। मुल्तान शक्कर दिल्ली और लाहौर से प्राप्त करता था और घी सिरसा (हरियाणा) से।

शहरों के बीच लम्बी दूरी के व्यापार द्वारा विदेशों से आने वाली वस्तुएं सीमा के शहरों से अन्य शहरों को पहुंचती थीं तथा निर्यात वाली वस्तुएं विभिन्न स्थानों से सीमावर्ती शहरों में। स्थली विदेश व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र संभवतः मुल्तान था। यह पुनः निर्यात के केन्द्र के रूप में भी कार्य करता था। गुजरात के भड़ौच और खम्भात जैसे तटीय शहर विदेशी व्यापार के विनिमय केन्द्रों के रूप में कार्य करते थे।

21.4.2 विदेशी व्यापार: समुद्री व स्थली

सल्तनत काल में समुद्री और स्थल दोनों ही प्रकार का व्यापार काफी बढ़ा।

समुद्री व्यापार

खलजी काल में दिल्ली सल्तनत में गुजरात के मिलने से दिल्ली सल्तनत और फारस की खाड़ी तथा लाल सागर के बीच व्यापारिक संबंध बढ़े क्योंकि गुजरात फारस की खाड़ी और लाल सागर से व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ा था। फारस की खाड़ी से गुजरने वाले जहाज़ों के लिए बसरा और हुर्मुज प्रमुख बंदरगाह थे। लाल सागर में अदन, मोचा और जद्दा के बंदरगाह गुजरात के लिए महत्वपूर्ण थे। इन बंदरगाहों से एक ओर तो माल डेमस्कस और अलेप्पो पहुंचता था और दूसरी ओर एलैक्जैण्डरिया। अलेप्पो और एलैक्जैण्डरिया भूमध्य सागर के मार्ग में थे जिससे यूरोप से सम्पर्क हो सका। गुजरात के बंदरगाहों से माल पूर्व की ओर मलक्का जलडमरूमध्य में मलक्का और इन्डोनेशियाई द्वीपसमूह में बेन्टम और अंचिन पहुँचता था।

एक यूरोपीय यात्री टॉम पायर्स जो 16वीं सदी के प्रथम दशक में भारत आया खम्भात (गुजरात में) का व्यापार के बारे में कहता है:

> "खम्भात अपने दोनों हाथ आगे फैलाता है। अपने दाहिने हाथ से वह अदन पहुँचता है और दूसरे हाथ से मलक्का ....

पायर्स आगे लिखता है:

> "मलक्का खम्भात के बिना नहीं रह सकता न ही खम्भात मलक्का के बिना अगर यह दोनों बहुत समृद्धशाली बनना चाहते हैं। अगर खम्भात को मलक्का के साथ व्यापार न करने दिया जाय तो इसका अस्तित्व समाप्त हो जायगा क्योंकि फिर इसके पास अपने माल के लिए कोई मार्ग नहीं बचेगा

गुजरात से मलक्का को निर्यात का प्रमुख माल रंगीन कपड़े थे जो खम्भात और गुजरात के अन्य शहरों में बनते थे। इन कपड़ों की इन नगरों (मलक्का के) में बहुत मांग थी। बदले में गुजरात के व्यापारी इन स्थानों में
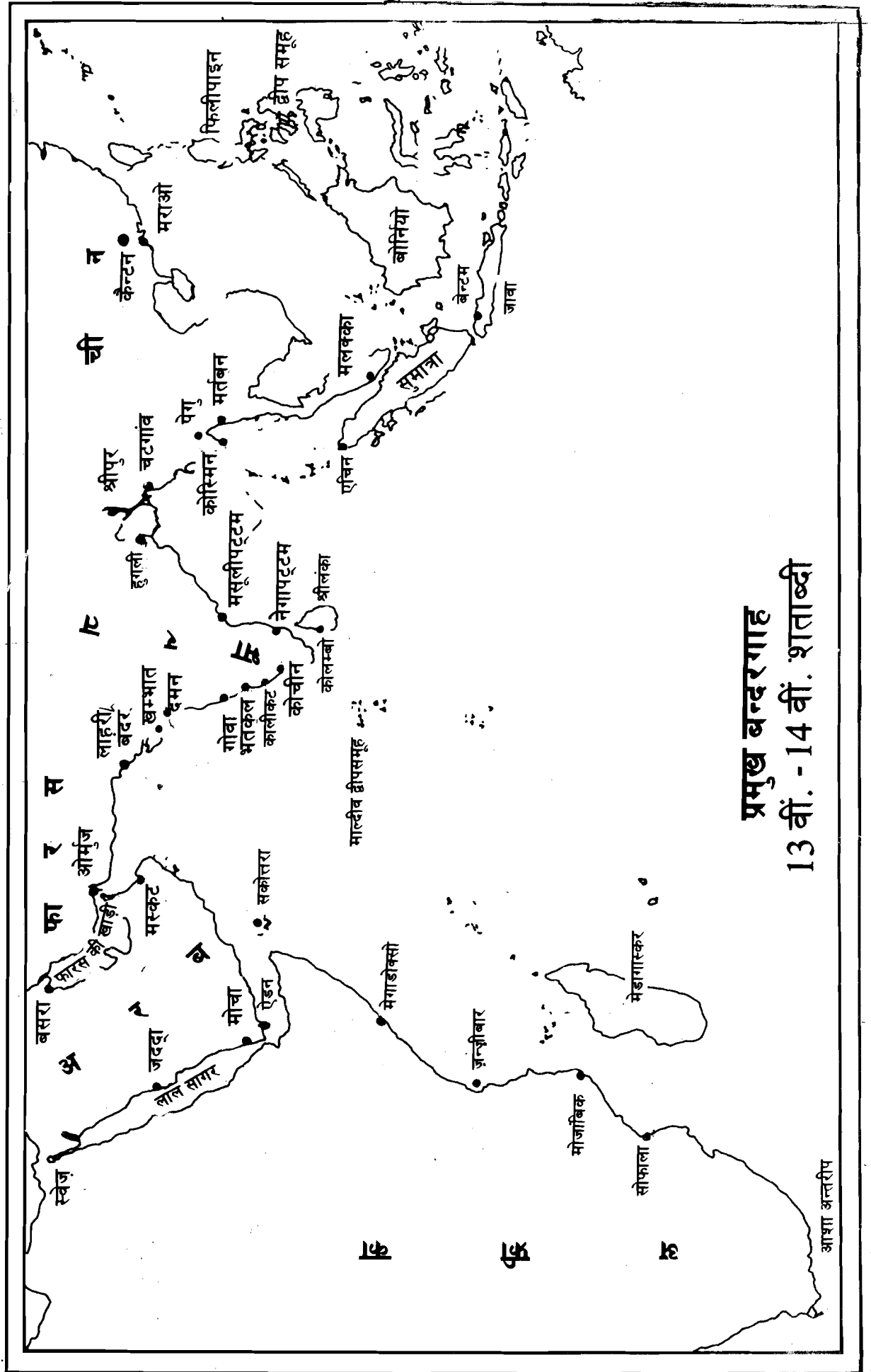
प्रमुख बन्दरगाह

13 वीं. - 14 वीं. शताब्दी

से मसाले लेकर आते थे। "रंगीन कपड़ों के बदले मसाले" का व्यापार पुर्तगालियों के एशिया में प्रवेश के समय तक जारी रहा।

इटली का यात्री वार्थेमा जो 16वीं सदी के प्रथम दशक में भारत आया लिखता है कि खम्भात के बंदरगाह में विभिन्न देशों के 300 जहाज (प्रति वर्ष) आते-जाते हैं। वह यह भी बताता है कि लगभग 400 "तुर्की" व्यापारी दुयु में रहते थे।

इलखानों के दरबार का इतिहासकार वस्साफ लिखता है कि प्रति वर्ष माबार और खम्भात में ईरान से लगभ 10,000 घोड़े लाये जाते थे। भड़ौच के सिक्कों के भण्डारों में (इकाई 19 देखें) दिल्ली सल्तनत के सिक्कों के साथ मिस्र, सीरिया, यमन, ईरान, जिनोवा, आर्मीनिया और वेनिस के भी सोने चांदी के सिक्के मिले हैं जो विस्तृत समुद्री व्यापार की पुष्टि करते हैं।

बंगाल के बंदरगाहों के भी चीन, मलक्का और सुदूर पूर्व से व्यापारिक संबंध थे। सूती वस्त्र, शक्कर और रेशम बंगाल से निर्यात की मुख्य वस्तुएं थीं। वार्थेमा के अनुसार प्रत्येक वर्ष लगभग 50 जहाज यह वस्तुएं लेकर ईरान और विभिन्न स्थानों को जाते थे। बंगाल में हुर्मुज़ से नमक और मालदीव से समुद्री सीपें आयात की जाती थी। यह सीपें बंगाल, बिहार और उड़ीसा में सिक्कों के रूप में प्रयोग की जाती थी।

समुद्री व्यापार का एक अन्य केन्द्र सिंध था। यहाँ का सबसे महत्वपूर्ण बंदरगाह दैबुल था। इस क्षेत्र के व्यापारिक संबंध लाल सागर की अपेक्षा फारस की खाड़ी के बंदरगाहों से अधिक थे। सिंध से विशेष किस्म के कपड़े और दूध से बने पदार्थ निर्यात किए जाते थे। धुँआरी मछली भी यहाँ की एक विशेषता थी।

तटीय व्यापार

तटीय व्यापार का विकसित होना स्वाभाविक ही था। सिंध से लेकर बंगाल तक बीच में गुजरात, मालाबार और कोरोमंडल के तट थे। इससे विभिन्न क्षेत्रों के माल को तटीय शहरों में विनिमय का अवसर मिला जो स्थली अंतर्क्षेत्रीय व्यापार से भिन्न था।

स्थल व्यापार

भूमि मार्गो से व्यापार का प्रमुख केन्द्र मुल्तान था। मुल्तान-क्वेटा मार्ग के द्वारा भारत मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरान से जुड़ा हुआ था। परन्तु मध्य एशिया और ईरान में बार-बार मंगोल आक्रमणों के कारण अव्यवस्था थी इसलिए व्यापारी इस मार्ग को अधिक पसंद नहीं करते थे।

आयात व निर्यात

आयात के दो प्रमुख वस्तुएँ थीं:

i) घोड़े – घुड़सवार सेना के लिए घोड़ों की जरूरत हमेशा बनी रहती थी क्योंकि भारत में अच्छी नस्ल के घोड़े नहीं होते थे और मध्य एशिया और अरब के घोड़ों के लिए भारत की जलवायु अनुकूल नहीं थी। ये घोड़े प्रमुखतः जोफर (यमन), किस, हुर्मुज़ तथा अदन से आयात किए जाते थे।

ii) बहुमूल्य धातुएँ — सोना और चांदी। विशेषकर चांदी की मांग बहुत अधिक थी क्योंकि भारत में खदानों से बहुत ही कम चांदी प्राप्त होती थी। साथ ही सिक्कों और विलासिता की वस्तुएँ बनाने के लिए इसकी मांग बढ़ती रहती थी। जरी, कमख्वाब और रेशम के कपड़े चीन, एलैक्जैण्डरिया तथा ईराक से आयात किए जाते थे। यूरोप से आने वाली मूल्यवान और विलासिता की वस्तुएँ गुजरात बंदरगाह से होकर आती थीं।

सल्तनत काल में भारत से निर्यात की प्रमुख वस्तुएं अनाज और सूती वस्त्र थे। फारस की खाड़ी के कुछ क्षेत्र अपनी खाद्य आवश्यकताओं के लिए पूर्णतया भारत पर निर्भर थे। दास मध्य एशिया को और नील ईरान को निर्यात किये जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सी वस्तुएं निर्यात की जाती थी। गोमेद तथा अन्य बहुमूल्य पत्थर खम्भात से निर्यात किए जाते थे।

पुर्तगालियों का आगमन

विस्तृत व्यापारिक गतिविधियों के बावजूद विदेशी व्यापार में भारतीय व्यापारियों की भागेदारी नगण्य थी केवल गुजराती बनियों का एक वर्ग, दक्षिण के **चेट्टी** तथा भारत में बसे कुछ मुसलमान व्यापारी इस बड़े व्यापार में भाग लेते थे। व्यापार मुख्यतया अरब व्यापारियों के हाथ में था। 1498 में पुर्तगाली आशा अंतरीप से होकर कालीकट पहुँचे। इसने भारतीय समुद्री व्यापार में "शक्ति के तत्व" का एक नया आयाम जोड़ा। अपने श्रेष्ठ तोप युक्त जहाजों की सहायता से पुर्तगालियों ने शीघ्र ही एशिया के व्यापार पर अपना

प्रभुत्व स्थापित कर लिया। भारतीय समुद्रों के पश्चिमी भाग में स्थित व्यापारिक केन्द्र भी इस प्रभुत्व के अधीन हो गए। इसने भारतीय व्यापार पर अरब हिस्सेदारी बहुत कम कर दी हालांकि पूर्वी क्षेत्र में विशेषकर मलक्का में भारतीय व्यापारियों के साथ वे अपना अस्तित्व बचा पाये।

पुर्तगालियों ने 1510 में गोवा प्राप्त कर लिया और यह उनका मुख्यालय बना। उन्होंने 1511 में मलक्का, 1515 में हुर्मुज़, 1534 में बेसीन और 1537 में दयु पर अधिकार कर लिया। उनके संरक्षण में शीघ्र ही गोवा निर्यात व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। पुर्तगाली गोवा के सामरिक महत्व को भली-भाँति जानते थे और समझते थे कि भारत में अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए गोवा महत्वपूर्ण है। परन्तु गोवा पर पुर्तगालियों का अधिकार अन्य पश्चिम भारतीय बन्दरगाहों के लिए हानिकारक था। टॉम पॉयर्स उचित ही कहता है कि दक्खन और गुजरात के मुसलमान शासकों के लिए "गोवा एक हानिकारक पड़ोसी था"। भारतीय समुद्र पर 100 साल के पुर्तगाली प्रभुत्व के फलस्वरूप अनेक पश्चिमी तट के बन्दरगाहों का पतन हो गया। यह सब पुर्तगालियों की निम्नलिखित आक्रमणकारी नीतियों के कारण हुआ :

i) उन्होंने समुद्री मार्गों पर अधिकार कर लिया,
ii) अन्य व्यापारियों द्वारा ले जाये जाने वाले माल और उसकी मात्रा पर भी नियंत्रण रखते थे, तथा
iii) उन्होंने **कार्थेज** (फारसी का **किरतार** अर्थात् कागज का पत्र) जारी करने की परम्परा प्रारम्भ की। यह एशियाई समुद्र में जहाजों के आने-जाने के लिए एक प्रकार का आज्ञा पत्र था। इसके न होने पर माल लूट कर जहाज जब्त किया जा सकता था। **कार्थेज** देने के लिए एक निश्चित धनराशि ली जाती थी।

इन नीतियों ने भारतीयों तथा अरबों के समुद्री व्यापार को बहुत हानि पहुँचाई।

21.4.3 व्यापार से संबंधित वर्ग

सल्तनत कालीन ग्रंथों में दो प्रकार के व्यापारियों का विवरण मिलता है : **कारवानी** अथवा **नायक** और **मुल्तानी**। जो व्यापारी अनाज का व्यापार करते थे बर्नी उन्हें **कारवानी** (एक फारसी शब्द जिसका अर्थ है वे लोग जो बड़ी संख्या में एक साथ चलते हों या **कारवाँ**) कहते हैं। उस समय के एक प्रमुख सूफी नासिरूद्दीन चिराग दिल्ली उन्हें **नायक** कहते थे। वे उनका वर्णन करते हुए कहते हैं "ये वे लोग हैं जो विभिन्न क्षेत्रों से अनाज लेकर शहर (दिल्ली) आते हैं — कुछ के पास अनाज से लदे 10 हज़ार बैल होते हैं और कुछ के पास 20 हज़ार"। यह लगभग निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह **कारवानी** ही बाद के काल के बंजारे थे। मुगल काल के ग्रंथ यह स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यह बंजारे समूहों में रहते थे और इनका प्रमुख **नायक** कहलाता था।

मुल्तानी वह दूसरे प्रकार का महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग था जिसका वर्णन उस समय के स्रोतों में होता है। बर्नी कहता है कि अधिक दूरी का व्यापार इन व्यापारियों के हाथ में था। वे ब्याज और व्यापार **(सूद ओ सौदा)** दोनों ही कामों में संलग्न थे। ये **साह** और **मुल्तानी** इतने धनी थे कि कुलीनों को भी ऋण देते थे। बर्नी के अनुसार इस वर्ग को हमेशा धन की जरूरत रहती थी। अधिकांश **साह** और **मुल्तानी** हिन्दू थे। परन्तु कुछ मुसलमान मुल्तानी व्यापारियों का भी वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए हमीदउद्दीन मुल्तानी को बर्नी **मलिक उत तुज्जार** (महान् व्यापारी) नाम से संबोधित करता है। इन विशिष्ट व्यापारी वर्गों के अतिरिक्त भी जो भी चाहे व्यापार कर सकता था। उदाहरण के लिए बिहार के एक सूफी दिल्ली और गज़नी के बीच दासों के व्यापार में संलग्न थे। अनेकों धार्मिक व्यक्ति मध्य एशिया से दिल्ली आकर व्यापार में लग गए थे।

दिल्ली सल्तनत में उभरनें वाला एक अन्य वर्ग **दलालों** का था जो व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। वे बेचने और खरीदने वाले के बीच एक संपर्क के रूप में काम करते थे और दोनों ही पक्षों से अपना कमीशन लेते थे। बर्नी कहता है कि ये लोग "बाजार के स्वामी" **(हाकिमान बाजार)** थे। उसके अनुसार बाजार में कीमतें बढ़ाने के लिए भी यह उत्तरदायी थे। वस्तुओं की कीमतें निर्धारित करते समय अलाउद्दीन खलजी दलालों से परामर्श लेता था और पूछता था कि प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में कितनी लागत आती है। बर्नी "प्रधान" दलाल **(मिहतरान-ए-दलालहा)** का उल्लेख भी करता है। इससे ऐसा आभास मिलता है कि दलालों का एक निश्चित संघ भी होता था। परन्तु इसके विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। अलाउद्दीन खलजी के काल में इन "प्रधान" दलालों के साथ बहुत कड़ाई की गई। लेकिन फिरोज़ तुगलक के काल तक इस वर्ग ने अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर ली। फिरोज़ तुगलक ने दलालों पर लगाए जाने वाले **दलालात-ए बाज़ारहा** नामक कर भी समाप्त कर दिया। इसके अतिरिक्त यह नियम भी बनाया गया कि अगर खरीदने और बेचने वाले के बीच सौदा न हो सके तब भी दलाल लिया हुआ कमीशन वापस करने के लिए बाध्य नहीं थे। इससे यह भी आभास मिलता है कि तुगलक काल में दलाली एक भली प्रकार स्थापित संस्था का रूप ले चुकी थी।

सर्राफ एक अन्य व्यवसायिक वर्ग था। इसकी भूमिका भी दलाल से कम महत्वपूर्ण नहीं थी। मुद्रा विनिमय के कारण यह व्यापारियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे विशेषकर विदेशी व्यापारियों के लिए जो अपने देश की मुद्रायें लेकर आते थे। वे सिक्कों में धातु की शुद्धता (भारतीय व विदेशी) की जांच करते थे और सिक्कों के विनिमय की दर निर्धारित करते थे। वे **हुंडी** (इसे फारसी में **सुफ्ताजा** कहते थे) भी जारी करते थे और मुद्रा पत्र भी देते थे। इस रूप में वे एक बैंक की भांति कार्य करते थे। तुर्कों के आगमन के बाद कागज के प्रचलन के कारण **हुंडी** की प्रथा बहुत तेजी से बढ़ी। इन सभी सेवाओं या कार्यों के बदले **सर्राफ** अपना एक निश्चित कमीशन लेते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस काल के व्यापारिक क्रियाकलापों में दलाल और **सर्राफ** की केन्द्रीय भूमिका थी। वे कई महत्वपूर्ण आर्थिक संस्थाओं के अभिरक्षक थे। वास्तव में कोई भी व्यापारी इनके बिना कार्य नहीं कर सकता था।

21.4.4 परिवहन

माल ढोने के लिए पशु और बैलगाड़ी दोनों का प्रयोग होता था। संभवतः पशुओं की पीठ पर लाद कर अधिक माल ढोया जाता था। इब्न बतूता लिखता है कि उसने देखा कि लगभग 3000 बैलों की पीठ पर लगभग 30,000 मन अनाज लाद कर अमरोहा से दिल्ली जा रहा था। अफीफ के अनुसार बैलगाड़ी पर बैठ कर लोग यात्रा भी करते थे। माल ढोने वाले पशु परिवहन का बहुत सस्ता माध्यम था। यह पशु धीरे-धीरे रास्ते में चरते हुए बड़े झुण्डों में चलते थे जिससे परिवहन का खर्च कम होता था। इब्न बतूता लिखता है कि पूर्ण साम्राज्य विशेष मार्गों से जुड़ा था जिन पर बराबर दूरी पर स्तंभ तथा मीनारें बनाई जाती थीं। **मसालिक-उल अबसार** के लेखक शहाबुद्दीन अल उमरी के विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा व्यापार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने का प्रयास किया जाता था। हर पड़ाव पर **सराय** बनाई जाती थी। बंगाल में इवाज़ खलजी ने बाढ़ रोकने के लिए लंबे बांध बनाये, नदियों के मार्ग से थोक माल ले जाने के लिए नावों की व्यवस्था की जाती थी जबकि समुद्री व्यापार के लिए जहाजों की व्यवस्था थी।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें :

i) बन्जारा

....

....

....

....

....

ii) **मुल्तानी**

....

....

....

....

....

iii) आयात व निर्यात की वस्तुएं

....

....

iv) "प्रेषित व्यापार"

v) दलाल और **सर्राफ**

व्यापार के विस्तार के लिए उत्तरदायी कारणों की विवेचना कीजिए।

परिवहन के प्रमुख साधनों का उल्लेख कीजिए।

4) 13वीं-14वीं शताब्दी के प्रमुख समुद्री और स्थल व्यापार मार्गों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

21.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि तुर्कों के आने के बाद उद्योग और व्यापार बढ़ा। हम देखते हैं कि 1200 ई. के बाद के सिक्कों के अधिक भण्डार मिलते हैं। इस काल में बहुत से नये नगरों का उदय हुआ। आपने यह भी पढ़ा कि शहरों में किस प्रकार शिल्प उत्पादन संगठित किया जाता था। आपने 13वीं-14वीं शताब्दी के प्रमुख समुद्री और स्थल मार्गों तथा प्रमुख बंदरगाहों की भी जानकारी प्राप्त की। आयात व निर्यात की प्रमुख वस्तुओं तथा परिवहन के प्रमुख साधनों के बारे में भी पढ़ा। साथ ही हमने व्यापार से संबंधित प्रमुख वर्गों—**कारवानी मुल्तानी, दलाल** और **सर्राफ** के बारे में भी अध्ययन किया। बढ़ी हुई व्यापारिक गतिविधियो के बावजूद भारतीय व्यापारियों की भागेदारी नगण्य थी; विशेषकर विदेशी व्यापार पर पूर्णतया अरब व्यापारियों का प्रभुत्व था। हमारे अध्ययन काल के अन्तिम वर्षों में आशा अन्तरीप की खोज के परिणामस्वरूप नए समुद्री मार्ग की खोज से पुर्तगालियों के भारत आगमन से एक नया आयाम जुड़ा। आने वाले वर्षो में विश्व के साथ भारत के व्यापारिक संबंधों में भारी परिवर्तन आए।

21.6 शब्दावली

घरेलू उत्पादन : उत्पादन की वह प्रक्रिया जिसमें कारीगर अपने औजारों और कच्चे माल की सहायता से अपने घरों में उत्पादन करते थे।

माल : भूमि कर

गृह उत्पादन पद्धति : उत्पादन का वह तरीका जिसमें कारीगर के औजार तो अपने होते थे परन्तु वस्तुएँ बनाने के लिए उन्हें कच्चा माल अथवा धन व्यापारियों द्वारा प्राप्त होते थे।

21.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें उप-भाग 21.2.1
2) i) √ ii) × iii) √

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 21.3
2) देखें उप-भाग 21.3.2

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 21.4
2) देखें भाग 21.4
3) देखें उप-भाग 21.4.1
3) देखें उप-भाग 21.4.2